महिला 'एक अभिशाप'

क्या लड़की होना अभिशाप है? क्या लड़की होने का मतलब खुद की इज्जत खो देना है? क्या घर में पुरूष वर्ग द्वारा अपनी बातों को थोपना सही है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर सिर्फ एक है और वह है - पुरूषों का महिलाओं या लड़कियों के प्रति अनुचित दृष्टिकोण या गलत व्यवहार, जिसकी शिकार हर दूसरी महिला या लड़की को हर रोज़ होना पड़ता है। अगर हम देखें तो जन्म से ही लड़की-लड़के में भेद-भाव किया जाता है। वो खेल जो शारीरिक तौर पर ज्यादा उर्जा लगाकर खेले जाते हैं, उन्हें प्राय: पुरूष वर्ग के लिए ही उचित माना जाता है क्योंकि महिला अर्थात् एक लड़की को शारीरिक तौर पर कमजोर समझा जाता है। इस निराधार विचारधारा का निराकरण गीता फोगाट जैसी महिलाओं का दृष्टान्त देकर किया जा सकता है। ऐसे दृष्टान्तों द्वारा भ्रामक विचारों वाले उन लोगों के लड़का-लड़की में भेद करने या उन्हें शारीरिक तौर पर कमजोर समझने की भूल को सुधारा जा सकता है। वस्तुत: यह एक लड़की की कहानी है। जब वह छह साल की हुई तो वह रोज देखती थी कि स्कूल में कुछ लड़के फुटबॉल खेल रहे होते थे। उसका भी बहुत दिल करता था खेलने का। जब वह तेरह साल की हुई तो वह उन लड़कों के पास गई और बोली- "मुझे भी खेलना है। तब उसको बोला गया कि यह लड़कियों का खेल नहीं। तुम जाओ यहाँ से और पढ़ाई पर ध्यान दो"। वह बहुत गुस्सा हुई और रोई भी यह सोचकर कि ऐसे तो मैं सिर्फ घर तक ही सीमित रह जाऊंगी। जब वह चौदह साल की हुई तो उसने सोचा कि मैं अपने माता-पिता से बात करती हूँ। क्या पता वो मुझे समझ सकें। पर हुआ कुछ और ही। उसके माता-पिता ने भी उसको मना कर दिया। वह फिर से टूट गई एक बार। फिर उसने सोचा कि मैं माता-पिता को बिना बताए खेलती हूँ। जिसमें उसे उसके मित्रों का भरपूर सहयोग मिला। पहले तो वह डरती थी कि अगर माता-पिता को पता चल गया तो वह बहुत मारेंगे, पर फिर उसने सोचा कि आज वक्त है। अगर डर कर रही तो ये सपना कभी भी पूरा नहीं हो पाएगा। वह डर पर विजय प्राप्तकर आगे बढ़ी एवं सफलता का संवरण कर सकी। देखा जाए तो गीता फोगाट जैसी सफल लड़कियों एवं अन्य लड़कियों बीच सिर्फ इतना ही अन्तर है कि गीता फोगाट जैसी लड़कियों को उनके माता-पिता का भरपूर सहयोग एवं समर्थन मिला। उनके माता-पिता हमेशा उनके साथ खड़े रहें। दूसरी तरफ वे लड़कियां हैं- जो माता-पिता के डर से तथा घर में बात पता चलने का भय मन में लेकर अपनी मेहनत और मन को पूरी तरह से वहाँ नही लगा सकती। इसलिए ऐसी लड़कियां कुछ करके भी कुछ नहीं कर पाती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी खेल या कोई भी कार्य किसी एक वर्ग (महिला या पुरूष) का नहीं होता है। सबको एक दृष्टि से ही देखना चाहिए। सब माँ के पेट से जन्मे हैं। ईश्वर ने सबको बुद्धि भी समान दी है। इसलिए बहुत से माता-पिता और ऐसे लोग जो लड़का-लड़कियों में भेद करते हैं, उनको जरूरत है- सोच बदलने की। जिस दिन सोच बदलेगी; हमें दोनों की अहमियत का पता चलेगा। बहुत पहले महिलाओं को एक प्रयोग की वस्तु समझा जाता था। समय धीरे-धीरे बदला और बदल भी रहा है, लेकिन पुरूषों की महिलायों के प्रति सोच वही रह गई है, जिसके कारण आज भी समाज में महिलाओं और पुरूषों में भेद परिलक्षित होता है। लेकिन कल्पना चावला, मदर टेरेसा, गीता फोगाट और ऐसी ही अनेकों महिलाओं ने अपने उत्कृष्ट कार्यों से पुरूषों को निरन्तर अपनी दकियानूसी सोच को बदलने पर मजबूर कर दिया है। इसे एक नवीन युग के निर्माण के अभिद्योतक के रूप में देखा जा सकता है।

साक्षी मोंगा
बी. कॉम. (प्रोग्राम)- द्वितीय वर्ष, एनसीडब्ल्यूईबी,
जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।